अंधकार के अट्टहास सी मृत्यु प्रलय के परिवेश से संबद्ध होने से अत्यन्त भयानक हो उठती है। और जीवन ! घनमाला में बिजली की क्षणिक चमक। इस तरह मनु का चिन्तन व्यक्ति से हटकर समष्टिपरक हो जाता है।

आशा सर्ग में प्रकृति-वर्णन के संकेतों में उल्लास को मूर्त किया गया है। वह मनु की अपनी प्रफुल्लता का भी सूचक है। हिमालय का परिवर्तित रूप देखिए—

अचल हिमालय का शोभनतम लता कलित शुचि सानु शरीर
निद्रा में सुख स्वप्न देखता जैसे पुलकित हुआ अधीर।

थोड़े समय पूर्व हिमालय की स्थिति दूसरी थी 'नव कोमल आलोक बिखरता हिम-संसृति पर भर अनुराग।' किन्तु जब लताच्छादित उसका शोभन शरीर ऐसा मालूम पड़ने लगा मानों नींद में स्वप्न देखकर कोई पुलकाकुल हो उठा हो। श्रद्धा 'स्पर्श के आकर्षण से पूर्ण, प्रकट करती जड़ में स्फूर्ति।' आकर्षण श्रद्धा की—नारी मात्र की—केन्द्रवर्ती विशेषता है। इसमें आकर्षण शब्द विशेष रूप से द्रष्टव्य है। चिन्ता सर्ग में मनु ने देखा था—

धू-धू करता नाच रहा था अनस्तित्व का तांडव नृत्य।
आकर्षण विहीन विद्युत्कण बने भारवाही थे भृत्य।

लेकिन बदली हुई परिस्थितियों में सब कुछ आकर्षण की दीप्ति से प्रकाशित है। व्यापक अर्थ में आकर्षण ही काम है। इस आकर्षण के अभाव में आत्मविस्तार सम्भव नहीं है—'तपस्वी आकर्षण से हीन कर सके नहीं आत्मविस्तार।' इसके फलस्वरूप जिस वासना का उदय हुआ उससे अजीब उल्लास, स्नेह, शान्ति, विस्मय आदि की सृष्टि हुई। इसकी अभिव्यक्ति के लिए प्रकृति के उपकरणों—रागरंजित चंद्रिका, मदिर भीनी माधवी की गन्ध, उड़ते पराग, पुलकित पवन—का आधार ग्रहण किया गया है। मनु पूछ बैठते हैं—

कौन हो तुम विश्व माया कुहुक सी साकार
प्राणसत्ता के मनोहर भेद सी सुकुमार।

कामोदय के बाद मनु में वासना और श्रद्धा में लज्जा का उदय होता है। लज्जा का काव्यात्मक बिंब उपस्थित करने के लिए अनुभावों का सहारा लिया गया है 'पुलकित कदंब की माला सी नयनों में भर बांकपन/स्मृति बन जाती तरल हँसी, कपोलों की लाली, आँखों का आँजन' आदि और:—

छूने में हिचक, देखने में पलकें आँखों पर झुकती हैं
कलरव परिहास भरी गूँजें अधरों तक सहसा रुकती हैं।

लज्जा के दो पहलू हैं—सौन्दर्यात्मक और मूल्यात्मक। यह चेतना का उज्ज्वल वरदान है और इसी का नाम सौन्दर्य है। लज्जा शालीनता का दूसरा नाम है। मनोवैज्ञानिकों के मतानुसार यह नारी की मज्जागत विशेषता है। किन्तु जहाँ लज्जा अपना संदेश सुनाती हुई कहती है—

नारी ! तुम केवल श्रद्धा हो विश्वास रजत नग पग तल में
पीयूष स्रोत सी बहा करो जीवन से सुन्दर समतल में

वहाँ काव्य मध्यकालीन नैतिकता की ओर घूम जाता है। उसका सम्पूर्ण संदेश लज्जा का अनिवार्य अंग नहीं बन पाता। यहीं पर रचना, संश्लिष्टता क्षतिग्रस्त हो जाती है।

कर्म सर्ग दो पद्धतियों का द्वंद्व है—प्राणिमात्र के प्रति ममत्व और आत्मकेन्द्रित ममत्व। आत्मकेन्द्रित ममत्व ईर्ष्या को जन्म देता है और व्यक्ति अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए इड़ा या बुद्धि का सहारा लेता है। इसके बाद स्वप्न, संघर्ष और निर्वेद सर्ग हैं।

आनन्दवर्धन के मतानुसार काव्य की संघटना गुणों पर आश्रित होती है। लेकिन यह तर्कसंगत नहीं है क्योंकि पाठक के सामने संघटना होती है गुण नहीं। यह मंचीय संघटना भी हो सकती है या इतर काव्य संघटना भी। कुछ आचार्य संघटना को धर्मी और गुण को धर्म मानकर संघटना को ही प्रमुखता देते हैं। इस संघटना को व्यापक अर्थ देकर आज की संरचना के साथ जोड़ा जा सकता है। सम्भवतः यह कुंतक की कविव्यापार-वक्रता से बहुत भिन्न नहीं है। भिन्न-भिन्न प्रकार के काव्यों की संघटना भी भिन्न होगी ही।

कामायनी की जटिल संघटना के आधार पर उसके गुणों को खोजा जा सकता है। अगर उसे महाकाव्य के पूर्व निश्चित सिद्धान्तों के आधार पर महाकाव्य सिद्ध करने की जिद बनी रही तो उस पर पूर्व निश्चित प्रतिमान भी आरोपित किये जायेंगे। सामान्यतः घुमा-फिरा कर किसी ने उसमें दंडी द्वारा निर्धारित महाकाव्य के तत्त्वों को देखा है तो किसी ने अरस्तू के काव्यशास्त्र में निर्धारित तत्त्वों को। या फिर बौद्धिकता, समरसता, चारित्रिक उदात्तता, आधुनिकता, वस्तु-वर्णन आदि को गिनाकर उसे महाकाव्य सिद्ध कर दिया जाता है।

इसे उदात्त-तत्त्व के आधार पर भी महाकाव्य कहा जाता है। इसके कथानक, कार्य, चरित्र, भाव और शैली को उदात्त माना गया है। उदात्त स्वयं गोल शब्द है। ब्रैडले ने सुन्दर के जो पाँच भेद—उदात्त, भव्य, मधुर, मनोरम, ललित—किए हैं, वे गुणमूलक, या प्रशंसामूलक और हवाई हैं। उनके आधार पर रचना की प्रशस्ति की जा सकती है, विवेचना नहीं।

वस्तुतः कामायनी की संरचना अर्थ के विभिन्न स्तरों को समान रूप से महत्वपूर्ण धरातल पर प्रतिष्ठित नहीं कर पाती। किसी लेखक को भाषा अपने समाज से मिलती है। उसकी अपनी भूमि और सीमा होती है। शैली लेखक का जीवमनोवैज्ञानिक पहलू है। वह भाषा और शैली में स्थित या कंडिशन्ड होता है। यह स्थिति उसके मंतव्य को अतिक्रमित करती है। इसी के आधार पर लेखक पुनर्रचना करता है और प्रतिश्रुत होता है।

मनुष्य के मन के अन्तर्विकास को दिखाते हुए प्रसाद ने उसे आनन्दवाद में पर्यवसित किया है। यह आनन्दवाद शैवागम का आनन्दवाद है, दर्शन है। अतः संरचना या काव्य-प्रक्रिया का अनिवार्य अंग नहीं हो सका है। बीच के सर्गों में जहाँ दर्शन काव्य संरचना में अन्तर्भुक्त है वहाँ उसमें अपूर्व चमक आ गयी है।

जीवन तेरा क्षुद्र अंश है व्यक्त नील घनमाला में।
सौदामिनी संधि-सा सुन्दर क्षण भर रहा उजाला में।

यह बौद्धदर्शन का क्षणवाद सम्पूर्ण चिन्ता सर्ग को सर्ग या सर्जना को गौरव देता

है, चिन्ता की कटुता और वेदना की क्षणभंगुरता का संदर्भ देकर सर्ग की संघटना का अंग हो जाता है।

समरसता को दूर तक संघटना का अंग बनाया गया है। मानव जीवन प्रायः वैषम्य की पीड़ा से विकल रहा है, सुख-दुःख, आकांक्षा-तृप्ति, अधिकार-अधिकारी, नर-नारी, आत्मोपासना-प्राणोपासना की विषमता से आधुनिक जीवन पहले की अपेक्षा अधिक संत्रस्त है। इन्हें सामान्यतः मनु-श्रद्धा के माध्यम से व्यक्त किया गया है। पर जब श्रद्धा की मुसकान द्वारा इच्छा, क्रिया और ज्ञान में सामरस्य स्थापित करके कहा जाता है—

समरस थे जड़ या चेतना, सुन्दर साकार बना था।
चेतनता एक विलसती आनन्द अखण्ड घना था।

तो सामरस्य सांप्रदायिक हो जाता है।

बिंबों और प्रतीकों का संघटना में महत्व होता है। कामायनी में एक से एक सुन्दर ऐंद्रिय बिंब है—चक्षु और घ्राण बिंब। इस दोनों बिंबों की इसमें प्रचुरता है। ये बिंब प्रसाद के जैव मनोवैज्ञानिक प्रकृति के अनुकूल हैं। इन बिंबों से भिन्न जहाँ उन्होंने अन्य प्रकारों के बिंबों का सृजन किया है वे न उतने प्रभावशाली बन पड़े हैं और न ऐंद्रिय। संघर्ष और काम सर्ग के बिंब ऐसे ही हैं।

कामायनी में जो प्रतीतियाँ मनोविज्ञान से सम्बद्ध हैं वे अपने-संदर्भों में सार्थक हैं। पर श्रद्धा और इड़ा की प्रतीकात्मकता लज्जा, काम आदि से भिन्न है। लज्जा और काम 'हारमोनिक' विशेषताएँ हैं जब कि श्रद्धा और इड़ा सामाजिक अहं (सुपरइगो) के पाये हैं। इसलिए उन्हें सामाजिक संदर्भों में भी सार्थक होना जरूरी है। मनु को सामाजिक संदर्भ न भी दिया जाय तो भी हर्ज नहीं है। उसे मात्र प्रतीक मान लेने पर भी संघटनापरक बाधा नहीं खड़ी होती।

किन्तु श्रद्धा बहुत दूर तक चरित्र होकर भी इड़ा से मिलने पर शुद्ध प्रतीक हो जाती है। इससे उसकी चारित्रिकता का खण्डित होना सहज है। मनु का इड़ा को आलिंगन-पाश में बाँधने के प्रयास का स्थल उसे पूरा प्रतीक बना देता है और जब वह निर्दोष होकर भी श्रद्धा के सम्मुख अपना दोष स्वीकार कर लेती है तो उसकी प्रतीकात्मकता पुष्ट हो जाती है। इससे संघटना की प्रक्रिया में जो मानववादी मूल्य दिखाई पड़ रहा था वह लुप्त हो जाता है, और काव्य एक प्रकार की नैतिक साधना की ओर अग्रसर हो उठता है।

इड़ा का स्वरूप या नखशिख वर्णन उसकी प्रतीकात्मकता को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करता है—

बिखरी अलकें ज्यों तर्क जाल
वह विश्व मुकुट सा उज्ज्वलतम शशिखंड सदृश था स्पष्ट भाल
दो पद्म पलाश चषक से दृग देते अनुराग विराग ढाल
गुंजरित मधुप से मुकुल सदृश वह आनन जिसमें भरा गान
वक्षस्थल पर एकत्र धरे संस्कृति के सब विज्ञान ज्ञान
था एक हाथ में कर्म कलश वसुधा जीवन रस सार लिये